अमरकंटक
२२ अक्टू.८५.

मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद) के प्रचार क्रम में = शिक्षा - दर्शन =

शिक्षा-दर्शन ही शिक्षा का आधार है। शिक्षा के अभीष्ट में शिष्टता समाहित है। शिष्टता पूर्ण दर्शन ही, शिक्षा होता है। मूलतः शिक्षा परंपरा, जीवन के सभी आयामों, कोणों, दिशा एवं परिप्रेक्ष्य को लिए हुए है। शिक्षा नीति एक सड़क है और उसका एक निश्चित उद्देश्य है। उपलब्धि के लिए शिक्षा का आदान प्रदान अपरिहार्य सिद्ध होता है। शिक्षा, शिक्षा मानस की समृद्धि पर ध्यान देने पर, और उसकी व्यावहारिक प्रक्रिया पर निर्भर है। अभी शिक्षा मानस की समृद्धि पर ध्यान देना आवश्यक है। हम साक्षरता, तकनीकी और विज्ञान को चरितार्थ करने की दिशा में अपार प्रयास किए और करते आ रहे हैं। यह यांत्रिकता की सीमा में प्रयोजन सिद्ध हुआ। परमनुष्य पूर्णतः यांत्रिक नहीं है। मूल में, मनुष्य में संचेतनशीलता का होना पाया जाता है। मनुष्य में पाई जाने वाली संचेतना की तृप्ति के अर्थ में ही, शिक्षा सार्थक होती है। संचेतना की चरितार्थता उसकी तृप्ति के अर्थ में है। संचेतना, संज्ञानशीलता एवं संवेदनशीलता का संयुक्त रूप है। इस कारण सार्वभौम गुण स्वभाव में ही मनुष्य का अति संतृप्त होना देखा जाता है। संचेतना की सार्वभौमता, उसके मूल्यों की पहिचान से, उसके मूल्यांकनवादी चरित्र में सार्थक होता है। मूल्य, मूल्यांकन-प्रक्रिया एवं ज्ञान (संचेतना) का परंपरागत होना, व्यावहारिक हो। प्रत्येक विद्यार्थी में ज्ञान एवं समझ समान रूप से वर्तमान है, उसकी ही अभिव्यक्ति प्रक्रिया, प्रणाली एवं पद्धति को शिष्टता एवं सामाजिकता पूर्ण स्वरूप देना ही शिक्षा का ऐश्वर्यकारी कार्यक्रम है।

भौतिकवादी विचारधारा में, चेतना को व्यावहारिक मान लेने पर, वह यांत्रिक हो जाता है अथवा यांत्रिकता के अर्थ में, अपने अर्थ को स्पष्ट कर पाता है। दूसरी ओर अधिभौतिकवादी चरित्र आदर्श प्राय हो जाता है। यदि अधिभौतिकवादी चरित्र (अर्थात आदर्शों) को व्यावहारिक मान लिया जाय जिससे मानव सुलभ जीव-कारुण्य प्रकाशित होता है, तो वह यांत्रिकता अर्थात भौतिकवादिता को नगण्य मानने लगता है। दूसरी ओर भौतिकवादी चरित्र को अपनाया हुआ मनुष्य, समुदाय से प्रताड़ित होता हुआ देखा गया है। उसकी दार्शनिक सत्यता भी अनमिलन (द्वन्द) की स्थिति में ही स्पष्ट होती है। अधिभौतिकवादी (अध्यात्मवादी) चेतना से पदार्थ की उत्पत्ति होना स्वीकारते हैं। भौतिकवादी, पदार्थ से चेतना को निष्पन्न करने के पक्ष में समस्त तर्क देते गए फलतः अध्यात्मवादी अपने को रहस्य में अंत करने के लिए बाध्य हुए। भौतिकवादी अपने को अनिश्चितता एवं अस्थिरता में अंत करने के लिए बाध्य हुए। इस प्रकार दोनों ही वाद मनुष्य से संबद्ध दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्य एवं आयाम सम्बन्धी स्पष्ट गति एवं लक्ष्य को (गम्यता) शिक्षित, प्रशिक्षित एवं प्रबोधित

करने में असमर्थ रहा। यही निग्रह बिंदु है, इसके आगे रास्ता नहीं है। इससे उबरने के लिए शिक्षा विद् एवं विद्वानों के पास दो ही विकल्प है — (१) दोनो विचार धाराओं को मिलाकर, घटाकर, जोड़कर एवं काटकर यदि उक्त सभी बिंदुओं के अर्थ में सार्वभौम समाधान निकलता है तो उसे व्यवहार रूप देने के लिए प्रयास करना। अन्यथा

(२) विकल्पात्मक विश्व-दृष्टिकोण को अनुसंधान पूर्वक विकसित करना।

इसी क्रम में विकल्पात्मक विश्व दृष्टिकोण समीचीन होने की स्थिति में, उसे पूर्णतः हृदयंगम करने का प्रयास करना चाहिए; तदुपरान्त सार्वभौमता सिद्ध होने की स्थिति में उसे व्यवहार, शिक्षा एवं व्यवस्था का स्वरूप देने के लिए कटिबद्ध होना चाहिए। इसी क्रम में मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद) हमें उपलब्ध है।

"मध्यस्थ दर्शन" में सत्ता अर्थात चेतना में संपृक्त प्रकृति को अस्तित्व सर्वस्व प्रतिपादित किया गया है। इसमें दोनों वादों के तर्क अर्थात चेतना से पदार्थ, पदार्थ से चेतना को निष्पन्न कराने का सम्पूर्ण तर्क व्यर्थ सिद्ध हो जाता है। यह स्वयं स्पष्ट है कि अस्तित्व न कभी घटता है न कभी बढ़ता है। अस्तित्व में मात्रा के स्तर में जो भी परिवर्तन हो रहा है, उसे हम कैसे भी नाम दें, किन्तु मूलतः कोई वस्तु न उत्पन्न होती है और न कोई नष्ट होती है। अस्तित्व के अतिरिक्त और किसी वस्तु या स्थिति की कल्पना करने की व्यवस्था मनुष्य के पास नहीं है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अस्तित्व को समझने के स्थान पर हम हजारों वर्षों से भटकते आ रहे हैं। इस प्रकार, सत्ता में संपृक्त प्रकृति, अस्तित्व सर्वस्व होने के कारण, अस्तित्व स्वयं सह-अस्तित्व है। इस सत्यता को मध्यस्थ दर्शन प्रतिपादित करता है।

सत्ता में संपृक्त प्रकृति की, नित्य सामरस्य होने की सत्यता को, सत्ता में नियंत्रित प्रकृति, नित्य क्रियाशील एवं विकासशील होने के साक्ष्य को स्पष्ट करती है। इससे चेतना में संपृक्त प्रकृति का, चेतना में सामरस्य रत होने की सत्यता स्पष्ट हो जाती है। साथ ही विकासशील प्रकृति के विकास-क्रम; घटना पूर्वक विभिन्न पदों में होने तथा विभिन्न अर्थों अर्थात मूल्यों को अभिव्यक्त एवं प्रकाशित करने की व्यवस्था को मध्यस्थ दर्शन ने स्पष्ट करते हुए, इस धरती पर चार अवस्था की सृष्टि को निरूपित किया है, जिन्हे क्रमशः

(I) पदार्थावस्था (II) प्राणावस्था (III) जीवावस्था (IV) ज्ञानावस्था का

नाम प्रदान किया है। साथ ही, क्रम से विकसित होने की सत्यता को स्पष्ट किया एवं मनुष्य को सर्वोच्च विकसित इकाई होने की गरिमा एवं महिमा को प्रबोधित करते हुए, जीवों से मौलिक रूप से भिन्न होने की सत्यता को उद्घाटित किया।

'मध्यस्थ दर्शन' ने जीवन प्रतिष्ठा को और संचेतना को स्पष्ट करते हुए नियति क्रम व्यवस्था में अध्ययन सुलभ कर दिया कि "जड़ प्रकृति विकसित होकर, चैतन्य पद में प्रतिष्ठित होती है - यह व्यवस्था है।" इससे जीवन और शरीर की मौलिक भिन्नता प्रतिपादित होती है। जीवन, गठन पूर्णता प्राप्त एक परमाणु है, यह सत्यता उद्घाटित हुई है, फलतः जीवन का अमरत्व और शरीर का नश्वरत्व इंगित होता है। यही जीवन, संचेतना के स्वरूप में शरीर के द्वारा निरंतर प्रकाशमान है। जीवन में ही, संज्ञानीयता एवं संवेदनशीलता का अपेक्षाकृत अधिक प्रचुरता से होना पाया जाता है। संज्ञानीयता एवं संवेदनशीलता प्रत्येक जीवन में अर्थात प्रत्येक मनुष्य में समान रूप से रहता है। इसे समाज संचेतना का रूप देना ही अर्थात समाज संचेतना के रूप में वर्तने योग्य संस्कार, प्रबोधन, प्रयोग एवं व्यवहार रूप देना ही शिक्षा का अनिवार्य कार्य है। संचेतना में, संस्कार और प्रबोधन-पूर्वक ही गुणात्मक विकास होता है, इसी सत्यतावश शिक्षा संस्कार-पूर्वक मनुष्य को सामाजिक होने की व्यवस्था समीचीन रहती है।

शिक्षा में प्रधानतः मूल्यों को इंगित करना अति आवश्यक है। मूल्य ही, मूल्यांकन का आधार है। मनुष्य जीवन में मूल्य एवं मानव मूल्य को पहचानने पर ही वह सामाजिक होने की व्यवस्था है। केवल वस्तु मूल्य से मनुष्य को सामाजिक बनाना संभव नहीं है क्योंकि वस्तुएं समाज गति के लिए उपयोगी होती हैं। वस्तु ही सम्पूर्ण मूल्य अर्थात समाज मूल्य, मानव मूल्य और जीवन मूल्य नहीं होता। इसके विपरीत, जीवन शक्तियां परावर्तित होकर श्रम के रूप में प्राकृतिक ऐश्वर्य पर नियोजित होती हैं फलतः उसमें उपयोगिता मूल्य एवं कला मूल्य का सिद्ध होना देखा जाता है। शरीर के द्वारा, जीवन अपने कार्य विन्यास को व्यवसाय और व्यवहार के रूप में अभिव्यक्त करता हुआ देखा जाता है जिसमें से व्यवहार में सामाजिक होना एवं व्यवसाय में अधिकाधिक उत्पादन सिद्ध करना ही सम्पूर्ण अभीष्ट है। इस प्रकार मनुष्य व्यवहार में सामाजिक होने एवं व्यवसाय में स्वावलम्बी होने के अर्थ को सार्थक बनाना ही शिक्षा-संस्कार की सार्थकता है। व्यवहार में मनुष्य को, संज्ञान शीलता एवं संवेदनशीलता की संयुक्ति प्रयुक्ति की आवश्यकता है। व्यवहार में ही मूल्यांकन की निरंतर आवश्यकता बनी रहती है। इस प्रक्रिया को सुलभ बनाने के लिए एवं मानव संचेतना को पहचानने के लिए, मध्यस्थ दर्शन इसे पूर्णतः अध्ययन सुलभ कराता है। गठन पूर्णता प्राप्त एक परमाणु है मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि एवं आत्मा जैसा अक्षय बल प्राप्त होता है तथा आशा, विचार

इच्छा, संकल्प व अनुभूति जैसी अक्षय शक्तियां अनवरत प्रत्येक मनुष्य में प्रकाशमान होने की सत्यता को स्पष्ट करता है। इन अक्षय बल एवं शक्तियों का संयुक्त स्वरूप ही संचेतना होने, संचेतना स्वयं संज्ञान शीलता एवं संवेदन शीलता का सम्मिलित रूप होने का प्रमाण है। मानव संचेतना, मानव का स्वत्व है। इस सत्य को प्रतिपादित करते हुए, मानव संचेतना ही मानवीयता है और मानवीयता ही मानव व्यवहार का आधार है। इस सत्य का अध्ययन, इस दर्शन ने सुलभ किया है।

मध्यस्थ दर्शन में, मनुष्य के संबंध में जो भी कहा गया है वह प्रत्येक मनुष्य में देखने को मिलता है, इस प्रकार मध्यस्थ दर्शन, मानव को केन्द्र में रखकर, सम्पूर्ण अध्ययन करता है। जीवन अथवा जीवन संचेतना ही अस्तित्व से अनुभूति तक का द्रष्टा है। इससे मनुष्य का दायित्व एवं कर्तव्य स्पष्ट हो जाता है। जीवन की गरिमा और महिमा को पहचानने तथा शरीर और शरीर जन्य कार्य विन्यास की उपयोगिता, आवश्यकता एवं प्रयोजनीयता के पहचान की दिशा में, यह एक देन सिद्ध हुआ है। इन सम्पूर्ण आवश्यकता, उपयोगिता व प्रयोजनीयता को समाज संचेतना के स्वत्व में पाने के लिए, शिक्षा संस्कार की व्यवस्था हमें करतलगत हो जाती है। शिक्षा को मूल्यों के अर्थ में एवं संस्कारों को मानव के परस्पर पहचान के अर्थ में प्रावधानित करने की व्यवस्था एवं इसकी निरंतरता से ही, सम्पूर्ण सीमाओं से ग्रसित मानव के मुक्त होने की व्यवस्था है।

मध्यस्थ दर्शन (सह अस्तित्ववाद) निम्न विचारों का भी विकल्प सिद्ध हुआ है -

(१) रहस्यात्मक अध्यात्मवाद के स्थान पर अनुभवात्मक अध्यात्मवाद सुलभ हो गया है जिसमें मानव, "प्रमाण व प्रामाणिकता एवं उसकी निरंतरता में आश्वस्त एवं विश्वस्त होने की व्यवस्था है। प्रमाण को प्रयोग, व्यवहार तथा अनुभव सिद्ध होना निरूपित है। साथ ही ~~व्यवहार व~~ "अनुभव पूर्वक, व्यवहार व प्रयोग सार्थक होता है" यह सत्य स्पष्ट है। अनुभव केवल सत्य में, सत्य से, सत्य के लिए होता है। सत्य ही अध्यात्म होने के कारण अनुभवात्मक अध्यात्मवाद सिद्ध हो जाता है। सत्य में संचेतना की अनुभूति होने की तृषा एवं व्यवस्था को संतुष्टि एवं समाधान के अर्थ में विकास होना एवं गुणात्मक विकास के क्रम में अध्ययन सुलभ किया है। और गठन-क्रिया एवं आचरण पूर्णता का प्रतिपादन, विश्लेषण पूर्वक ही सुलभ हुआ है।

परमाणु के गठन पूर्णता पर्यन्त मात्रात्मक विकास के साथ गुणात्मक विकास होने उसके अनंतर गुणात्मक विकास, अपरिष्कृत संचेतना से परिष्कृत एवं परिष्कृत पूर्ण संचेतना कैसरूप में प्रकाशित होने को स्पष्ट करते हुए परिष्कृत संचेतना पूर्वक मानव के सामाजिक होने की सार्वभौम व्यवस्था को स्पष्ट किया है।

संघर्षात्मक जनवाद के स्थान पर व्यवहारात्मक जनवाद का प्रबोधन 'मध्यस्थ दर्शन' के विश्व दृष्टिकोण के अनुसार हृदयंगम करने की व्यवस्था है। इसका आधार लोकाकांक्षा (न्याय की अपेक्षा एवं सही करने की इच्छा) व लोकलक्ष्य = (समाधान, समृद्धि, अभय एवं सह-अस्तित्व) की सार्वभौमता है। इसे सार्थक बनाने के लिए समुचित शिक्षा संस्कार एवं व्यवस्था की क्षमता व दायित्व को प्रतिपादित किया है। प्रत्येक मनुष्य में न्याय की अपेक्षा एवं कार्य व्यवहार को सही ढंग से करने की इच्छा एवं सार्वभौम लक्ष्य विद्यमान रहता है। साथ ही मनुष्य की रुचि में विविधता है इस व्यवस्था को स्पष्ट किया है। रुचियों (इन्द्रिय लिप्सा) का नियंत्रण, सार्वभौम लक्ष्य व आकांक्षा सुलभ होने वाले शिक्षा संस्कार व्यवस्था को स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार मानव संचेतना की सार्वभौमता असंदिग्ध रूप में अध्ययन सुलभ हो जाती है, जिससे वर्ग, समुदाय, रंग, नस्ल, जाति, पंथ एवं मतादि से मुक्त मानव संचेतनावादी एवं मानव संचेतना कारी स्वतंत्रता व अधिकार पूर्ण व्यवहार परंपरा स्थापित होती है। इसके साथ ही उसकी निरंतरता सतत वर्तमान रहने की संभावना समीचीन हुई है। इसे सफल सार्थक एवं व्यवस्थित रूप देना, हमारा लक्ष्य एवं कर्तव्य है।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के स्थान पर, समाधानात्मक भौतिक-वाद को, मध्यस्थ दर्शन ने स्पष्ट किया है। जिसके साक्ष्य में अस्तित्व, अस्तित्व में विकास एवं विकास क्रम, घटना एवं स्वयं-समाधान एवं उसकी निरंतरता होने की सत्यता को अध्ययन सुलभ करते हुए मानव संचेतना का अक्षय बल व अक्षय शक्ति सम्पन्न होने की सत्यता स्पष्ट हुई है। जिससे प्रत्येक मनुष्य अधिक उत्पादन एवं कम उपयोग करने योग्य हुआ है - यह ज्ञात होता है। साथ ही मनुष्य परिष्कृत संचेतना पूर्वक अर्थ की सुरक्षा एवं सदुपयोग करने लगता है फलतः आवश्यकताएं संयत होने लगती है - यह सत्यता उद्घाटित होने से, आवश्यकता से अधिक उपलब्धि की संभावना नित्य समीचीन होने की सत्यता स्पष्ट होती है। इस प्रकार परिष्कृत एवं परिष्कृत पूर्ण संचेतना पूर्वक अनुभवात्मक अध्यात्मवाद; मूल्य वाहकता व मूल्यांकन रूप में व्यवहारात्मक जनवाद; अधिक उत्पादन, कम उपयोग सहित आवर्तनशील व्यवस्था के रूप में समाधानात्मक भौतिकवाद मानव के सभी कोण, आयाम, परिप्रेक्ष्य एवं दिशा में चरितार्थ होने की व्यवस्था है।

उक्त तथ्यों को हृदयंगम करने के उपरान्त निम्नतीन समस्याओं का समाधान व्यवहार सुलभ हो जाता है जैसे -

(1) भोगोन्मादी रुचि के स्थान पर व्यवहारवादी रुचि रुझान को।

(2) कामोन्मादी मनोविज्ञान के स्थान पर मानव संचेतनावादी (परिष्कृत संचेतना) व मानव संचेतनाकारी संस्कार प्रक्रिया व प्रवृत्ति को।

(3) लाभोन्मादी अर्थ-व्यवस्था के स्थान पर, लाभ-हानि मुक्त, आवर्तनशील श्रम नियोजन व श्रम विनिमय वादी अर्थ-व्यवस्था को समग्र प्रकार से अध्ययन पूर्वक व्यवहार सुलभ करना, व्यवहार शिक्षा का स्वरूप है, इसे ही पूर्णतया हृदयंगम कराता है।

जन्म से ही प्रत्येक मनुष्य संचेतनाशील है, यही जीवन है। संचेतना की तृप्ति के लिए सम्पूर्ण कार्य-व्यवहार, विचार और अनुभव करते हुए मनुष्य को देखा जा रहा है। तृप्ति या अति संतृप्ति का ही नामकरण व स्थिति सुख, शांति, संतोष व आनंद है। आनंद का स्वरूप सार्वभौम अर्थात प्रामाणिकता पूर्ण होते तक संचेतना में तृप्त होता हुआ नहीं देखा जाता। कोई व्यक्ति किसी अनुचित कार्य में भी आनंद प्राप्त करने का दावा कर सकता है, किन्तु उसके दूसरे ही क्षण उसके अच्छाई होने की गवाही, इस प्रकार मिल जाती है कि वह स्वयं दूसरे क्रिया कलापों के द्वारा आनंद की तलाश में होता जाता है। दूसरा उदाहरण - बच्चों को आग अच्छा लगने पर भी, छूने पर अहित हो जाता है, उसके पश्चात कोई बच्चे उसे छूना नहीं चाहेंगे। कोई भी बच्चा असत्य, चोरी एवं परिग्रह से आनंद का अनुभव नहीं करता; वह प्रौढ़ होने के पश्चात उसके विपरीत पक्ष का भी हो जाता है और प्रौढ़ या युवावस्था में इंद्रिय आकर्षण वाले सुख को आनंद समझने पर भी, उसकी निरंतरता न होने की गवाही से उससे विमुख होना पड़ता है, या अन्य प्रकार से आनंद की तलाश करता है।

प्रिय-अप्रिय, हित अहित एवं लाभ-हानि दृष्टियों से मनुष्य को सामयिक रूप से सुख या दुख की झलक मिलती है। इस सीमा तक में उसकी प्रौढ़ होने के पश्चात समझना पड़ता है कि निरंतरता नहीं है। इन सभी साक्षियों से स्पष्ट हो जाता है कि अबोध सबोध अवस्थाओं में, अपूर्णतावादी कार्य-व्यवहार से पूर्णता की अपेक्षा सिद्ध नहीं होती। साथ ही यही पराभव अथवा वास्तविकता है जो आनंद की निरंतरता के लिए हमें उत्प्रेरित करता है। इसी सत्यतावश "आनंद को भोगता कौन है" - को पहचानने की आवश्यकता हुई। संचेतना, जीवन का स्वरूप होने के कारण, संचेतना के अक्षयता की निरंतरता शिशु बाल्य, कौमार्य एवं वृद्धावस्था में भी सम्पूर्ण मनुष्य में देखने को मिलता है। इस प्रकार संचेतना की तृप्ति ही जीवन की तृप्ति है। जीवन तृप्ति का स्वरूप, समाधान और प्रामाणिकता ही है। प्रामाणिकता और समाधान सार्वभौम और शाश्वत है, अस्तु जीवन तृप्ति का शाश्वत स्त्रोत स्पष्टतया मध्यस्थ दर्शन

के रूप में प्राप्त है। उसे ~~जानने~~ पाना ही व्यवहार शिक्षा की भूमिका है। इस प्रकार व्यवहार शिक्षा, संचेतना की दृष्टि को ध्यान में रखते हुए मानव के साम्य लक्ष्य और आकांक्षावादी लक्ष्य को निरूपित करना है।

सार्वभौम आकांक्षा- मानव में समृद्धि, समाधान, अभय और सह-अस्तित्व है। यही सार्वभौम लक्ष्य भी है। समृद्धि, अधिक उत्पादन से होती है। समाधान - क्यों और कैसे ? के उत्तर से होता है। अभय - न्याय व विनिमय सुलभता से होता है और सह अस्तित्व - मूल्य और मूल्यांकन से समीकृत व्यवहार, सर्व सुलभ होने की उत्प्रेरणा को मध्यस्थ दर्शन अध्ययन सुलभ कराता है॥

दिव्य पथ संस्थान
अमरकंटक